श्रीमद् भागवत रसिक कुटुंब

अनुस्मृतिः

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ अनुस्मृतिः

शतानीक उवाच

महामते महाप्राज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद ।

अक्षीणकर्मबन्धस्तु, पुरुषो द्विजसत्तम ॥ 1 ॥

सततं(ङ्) किं(ञ्) जपेज्जाप्यं(वँ्), विबुधः(ख्) किमनुस्मरन् ।

मरणे यज्जपेज्जाप्यं(यँ्), यं(ञ्) च भावमनुस्मरन्॥ 2 ॥

यं(ञ्) च ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठ, पुरुषो मृत्युमागतः।

परं(म्) पदमवाप्नोति, तन्मे वद महामुने ॥ 3 ॥

शौनक उवाच

इदमेव महाप्राज्ञ, पृष्टवां(म्)श्च पितामहम् ।

भीष्मं(न्) धर्मभृतां(म्) श्रेष्ठं(न्), धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ 4 ॥

युधिष्ठिर उवाच

पितामह महाप्राज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद ।

प्रयाणकाले किं(ञ्) जप्यं(म्), मोक्षिभिस्तत्त्वचिन्तकैः ॥ 5 ॥

युधिष्ठिरने पूछा-सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण महाप्राज्ञ पितामह ! मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले तत्त्व-चिन्तकोंको मृत्युकालमें किस मन्त्रका जप करना चाहिये ।

किमनुस्मरन् कुरुश्रेष्ठ, मरणे पर्युपस्थिते ।

प्राप्नुयात्परमां(म्) सिद्धिं(म्), श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ 6 ॥

कुरुश्रेष्ठ ! मृत्युका समय उपस्थित होनेपर किसका चिन्तन करनेवाला पुरुष परम सिद्धिको प्राप्त हो सकता है? यह मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ ।

भीष्म उवाच

सद्युक्तिसहितः(स्) सूक्ष्म, उक्तः(फ्) प्रश्नस्त्वयानघ ।

शृणुष्वावहितो राजन्-नारदेन पुरा श्रुतम् ॥ 7 ॥

भीष्मजीने कहा- राजन् ! निष्पाप नरेश ! तुमने जो प्रश्न उपस्थित किया है, वह उत्तम युक्तियुक्त और सूक्ष्म है। उसे सावधान होकर सुनो। जो पूर्वकालमें मैंने नारदजीसे सुना था, वहीं मैं तुमसे कहता हूँ ।

श्रीवत्साङ्कं(ञ्)) जगद्बीज-मनन्तं(लँ) लोकसाक्षिणम् ।

पुरा नारायणं(न्) देवं(न्), नारदः(फ्) परिपृष्टवान् ॥ 8 ॥

जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो इस जगत्के बीज (मूल कारण) हैं, जिनका कहीं अन्त नहीं है तथा जो इस जगत्के साक्षी हैं, उन्हीं भगवान् नारायणसे पूर्वकालमें नारदजीने इस प्रकार प्रश्न किया ।

नारद उवाच

त्वामक्षरं(म्) परं(म्) ब्रह्म, निर्गुणं(न्) तमसः(फ्) परम् ।

आहुर्वेद्यं(म्) परं(न्) धाम, ब्रह्मादि कमलोद्भवम् ॥ 9 ॥

भगवन् भूतभव्येश, श्रद्दधानैर्जितेन्द्रियैः ।

कथं(म्) भक्तैर्विचिन्त्योऽसि, योगिभिर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ 10 ॥

नारदजीने पूछा- भगवन्! महर्षिगण कहते हैं, आप अविनाशी (नित्य), परब्रह्म, निर्गुण, अज्ञानान्धकार एवं तमोगुणसे अतीत, विद्याके अधिपति, परम धामस्वरूप, ब्रह्मा तथा उनकी प्राकट्यभूमि-आदिकमलके उत्पत्ति-स्थान हैं। भूत और भविष्यके स्वामी परमेश्वर ! श्रद्धालु और जितेन्द्रिय भक्तों तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले योगियोंको आपके स्वरूपका किस प्रकार चिन्तन करना चाहिये? ।

किं(ञ्) च जप्यं(ञ्) जपेन्नित्यं(ङ्), कल्यमुत्थाय मानवः ।

कथं(यँ) युञ्जन् सदा ध्यायेद्, ब्रूहि तत्त्वं(म्) सनातनम् ॥ 11 ॥

मनुष्य प्रतिदिन सबेरे उठकर किस जपनीय मन्त्रका जप करे और योगी पुरुष किस प्रकार निरन्तर ध्यान करे? आप इस सनातन तत्त्वका वर्णन कीजिये ।

श्रुत्वा तस्य तु देवर्षेर्-वाक्यं(वँ) वाचस्पतिः(स्) स्वयम्।

प्रोवाच भगवान्विष्णुर्-नारदं(वँ) वरदः(फ्) प्रभुः ॥ 12 ॥

देवर्षि नारदका यह वचन सुनकर वाणीके अधिपति वरदायक भगवान् विष्णुने नारदजीसे इस प्रकार कहा ।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि, इमां(न्) दिव्यामनुस्मृतिम् ।

यामधीत्य प्रयाणे तु, मद्भावायोपपद्यते ॥ 13

श्रीभगवान् बोले- देवर्षे! मैं हर्षपूर्वक तुम्हारे सामने इस दिव्य अनुस्मृतिका वर्णन करता हूँ। मृत्युकालमें जिसका अध्ययन और श्रवण करके मनुष्य मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ।

ॐकारमग्रतः(ख्) कृत्वा, मां(न्) नमस्कृत्य नारद।

एकाग्रः(फ्) प्रयतो भूत्वा, इमं(म्) मन्त्रमुदीरयेत् ॥ 14 ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति । नारद ! आदिमें ओंकारका उच्चारण करके मुझे नमस्कार करे। अर्थात् एकाग्र एवं पवित्रचित्त होकर इस मन्त्रका उच्चारण करे- 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति।

इत्युक्तो नारदः(फ्) प्राह, प्राञ्जलिः(फ्) प्रणतः(स्) स्थितः ।

सर्वदेवेश्वरं(वँ) विष्णुं(म्), सर्वात्मानं(म्) हरिं(म्) प्रभुम् ॥ 15 ॥

भगवान्के ऐसा कहनेपर नारदजी हाथ जोड़ प्रणाम करके खड़े हो गये और उन सर्वदेवेश्वर सर्वात्मा एवं पापहारी प्रभु श्रीविष्णुसे बोले ।

नारद उवाच

अव्यक्तं(म्) शाश्वतं(न्) देवं(म्), प्रभवं(म्) पुरुषोत्तमम्।

प्रपद्ये प्राञ्जलिर्विष्णु-मक्षरं(म्) परमं(म्) पदम् ॥ 16 ॥

नारदजीने कहा- प्रभो ! जो अव्यक्त सनातन देवता, सबकी उत्पत्तिके कारण, पुरुषोत्तम, अविनाशी और परम पदस्वरूप हैं, उन भगवान् विष्णुकी मैं हाथ जोड़कर शरण लेता हूँ ।

पुराणं(म्) प्रभवं(न्) नित्य-मक्षयं(लँ) लोकसाक्षिणम् ।

प्रपद्ये पुण्डरीकाक्ष-मीशं(म्) भक्तानुकम्पिनम् ॥ 17 ॥

जो पुराणपुरुष, सबकी उत्पत्तिके कारण, नित्य, अक्षय और सम्पूर्ण जगत्के साक्षी हैं, जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं, उन भक्तवत्सल भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ ।

लोकनाथं(म्) सहस्त्राक्ष-मद्भुतं(म्) परमं(म्) पदम् ।

भगवन्तं(म्) प्रपन्नोऽस्मि, भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ 18 ॥

जो सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी तथा संरक्षक हैं, जिनके सहस्रों नेत्र हैं; तथा जो भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं, उन अद्भुत परमपदरूप भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ

स्रष्टारं(म्) सर्वलोकाना-मनन्तं(वँ) विश्वतोमुखम्।

पद्मनाभं(म्) हृषीकेशं(म्), प्रपद्ये सत्यमच्युतम्॥ 19 ॥

समस्त लोकोंके स्रष्टा और सब ओर मुखवाले, अनन्त, सत्य, अच्युत एवं सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् पद्मनाभकी मैं शरण लेता हूँ ।

हिरण्यगर्भममृतं(म्), भूगर्भं(म्) परतः(फ्) परम् ।

प्रभोः(फ्) प्रभुमनाद्यन्तं(म्), प्रपद्ये तं(म्) रविप्रभम् ॥ 20 ॥

जो हिरण्यगर्भ, अमृतस्वरूप, पृथ्वीको गर्भमें धारण करनेवाले, परात्पर तथा प्रभुओंके भी प्रभु हैं, उन अनादि, अनन्त तथा सूर्यके समान कान्तिवाले भगवान् श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ ।।

सहस्त्रशीर्षं(म्) पुरुषं(म्), महर्षि तत्त्वभावनम् ।

प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं(वँ), वरेण्यमभयप्रदम् ॥ 21 ॥

जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो अन्तर्यामी आत्मा हैं, तत्त्वोंका चिन्तन करनेवाले महर्षि कपिलस्वरूप हैं, उन सूक्ष्म, अचल, वरेण्य और अभयप्रद भगवान् श्रीहरिकी शरण लेता हूँ।

नारायणं(म्) पुराणर्षिं(यँ), योगात्मानं(म्) सनातनम् ।

सं(म्)स्थानं(म्) सर्वतत्त्वानां(म्), प्रपद्ये ध्रुवमीश्वरम् ॥ 22 ॥

जो पुरातन ऋषि नारायण हैं, योगात्मा हैं, सनातन पुरुष हैं, सम्पूर्ण तत्त्वोंके अधिष्ठान एवं अविनाशी ईश्वर हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी में शरण लेता हूँ ।

यः(फ्) प्रभुः(स्) सर्वभूतानां(यँ), येन सर्वमिदं(न्) ततम् ।

चराचरगुरुर्विष्णुः(स्), स मे देवः(फ्) प्रसीदतु ॥ 23 ॥

जो सम्पूर्ण भूतोंके प्रभु हैं, जिन्होंने इस समस्त संसारको व्याप्त कर रखा है; तथा जो चर और अचर प्राणियोंके गुरु हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।

यस्मादुत्पद्यते ब्रह्मा, पद्मयोनिः(फ्) पितामहः ।

ब्रह्मयोनिर्हि विश्वात्मा, स मे विष्णुः(फ्) प्रसीदतु ॥ 24 ॥

जिनसे पद्मयोनि पितामह ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है; तथा जो वेद और ब्राह्मणोंकी योनि हैं, वे विश्वात्मा विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।

यः(फ्) पुरा प्रलये प्राप्ते, नष्टे स्थावरजङ्गमे ।

ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु, नष्टे लोके परावरे ॥ 25 ॥

आभूतसं(म्)प्लवे चैव, प्रलीने प्रकृतौ महान् ।

एकस्तिष्ठति विश्वात्मा, स मे विष्णुः(फ्) प्रसीदतु ॥ 26 ॥

प्राचीन कालमें महाप्रलय प्राप्त होनेपर जब सभी चराचर प्राणी नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्मा आदि देवताओंका भी लय हो जाता है और संसारकी छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ लुप्त हो जाती हैं; तथा सम्पूर्ण भूतोंका क्रमशः लय होकर जब प्रकृतिमें महत्तत्त्व भी विलीन हो जाता है, उस समय जो एकमात्र शेष रह जाते हैं, वे विश्वात्मा विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च, द्वाभ्यां(म्) पञ्चभिरेव च।

हूयते च पुनर्द्वाभ्यां(म्), स मे विष्णुः(फ्) प्रसीदतु ॥ 27 ॥

चार, चार, दो, पाँच तथा दो- इन सत्रह अक्षरोंवाले मन्त्रोंद्वारा जिन्हें आहुति दी जाती है, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।

पर्जन्यः(फ्) पृथिवी सस्यं(ङ्), कालो धर्मः(ख्) क्रियाक्रिये।

गुणाकरः(स्) स मे बभ्रुर्-वासुदेवः(फ्) प्रसीदतु ॥ 28 ॥

मेघ, पृथ्वी, सस्य, काल, धर्म, कर्म और कर्मका अभाव - ये सब जिनके स्वरूप हैं, गुणोंके भण्डाररूप वे श्यामवर्ण भगबान् वासुदेव मुझपर प्रसन्न हों ।

अग्नीषोमार्कताराणां(म्), ब्रह्मरुद्रेन्द्रयोगिनाम्।

यस्तेजयति तेजां(म्)सि, स मे विष्णुः(फ्) प्रसीदतु ॥ 29 ॥

जो अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, तारागण, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा योगियोंके भी तेजको जीत लेते हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।

योगावास नमस्तुभ्यं(म्), सर्वावास वरप्रद।

यज्ञगर्भ हिरण्याङ्ग, पञ्चयज्ञ नमोऽस्तु ते ॥ 30 ॥

योगके आवासस्थान! आपको नमस्कार है। सबके निवासस्थान, वरदायक, यज्ञगर्भ, सुनहरे रंगोंवाले पञ्चयज्ञमय परमेश्वर ! आपको नमस्कार है ।

चतुर्मूर्ते परं(न्) धाम, लक्ष्म्यावास परार्चित ।

सर्वावास नमस्तेऽस्तु, वासुदेव प्रधानकृत् ॥ 31 ॥

आप श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध - इन चार रूपोंवाले, परमधामस्वरूप, लक्ष्मीनिवास, परमपूजित, सबके आवासस्थान और प्रकृतिके भी प्रवर्तक हैं। वासुदेव ! आपको नमस्कार है ।

अजस्त्वमगमः(फ्) पन्था, ह्यमूर्तिर्विश्वमूर्तिधृक् ।

विकर्तः(फ्) पञ्चकालज्ञ, नमस्ते ज्ञानसागर ॥ 32 ॥

आप अजन्मा हैं, अगम्य मार्ग हैं, निराकार हैं अथवा जगत्के सम्पूर्ण आकार आप ही धारण करते हैं, आप ही संहारकारी रुद्र हैं। आप प्रातः, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्न और सायाह्न- इन पाँच कालोंको जाननेवाले हैं। ज्ञानसागर! आपको नमस्कार है ।

अव्यक्ताद्व्यक्तमुत्पन्नं(वँ), व्यक्ताद्यस्तु परोऽक्षरः ।

यस्मात् परतरं(न्) नास्ति, तमस्मि शरणं(ङ्) गतः ॥ 33 ॥

जिन अव्यक्त परमात्मासे इस व्यक्त जगत्की उत्पत्ति हुई है, जो व्यक्तसे परे और अविनाशी हैं, जिनसे उत्कृष्ट दूसरी कोई वस्तु नहीं है, उन भगवान् विष्णुकी में शरणमें आया हूँ ।

न प्रधानो न च महान्, पुरुषश्चेतनो ह्यजः ।

अनयोर्यः(फ्) परतरस्-तमस्मि शरणं(ङ्) गतः ॥ 34 ॥

प्रकृति और महत्तत्त्व-ये दोनों जड हैं। पुरुष चेतन और अजन्मा है। इन दोनों क्षर और अक्षर पुरुषोंसे जो उत्कृष्ट और विलक्षण हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी में शरण लेता हूँ।

चिन्तयन्तो हि यं(न्) नित्यं(म्), ब्रह्मेशानादयः(फ्) प्रभुम् ।

निश्चयं(न्) नाधिगच्छन्ति, तमस्मि शरणं(ङ्) गतः ॥ 35 ॥

ब्रह्मा और शिव आदि देवता जिन भगवान्का सदा चिन्तन करते रहनेपर भी उनके स्वरूपके सम्बन्धमें किसी निश्चयतक नहीं पहुँच पाते, उन परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ ।

जितेन्द्रिया महात्मानो, ज्ञानध्यानपरायणाः ।

यं(म्) प्राप्य न निवर्तन्ते, तमस्मि शरणं(ङ्) गतः ॥ 36 ॥

ज्ञानी और ध्यानपरायण जितेन्द्रिय महात्मा जिन्हें पाकर फिर इस संसारमें नहीं लौटते हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी में शरण ग्रहण करता हूँ ।

एकां(म्)शेन जगत्सर्व-मवष्टभ्य विभुः(स्) स्थितः ।

अग्राह्यो निर्गुणो नित्यस्-तमस्मि शरणं(ङ्) गतः ॥ 37 ॥

जो सर्वव्यापी परमेश्वर इस सम्पूर्ण जगत्को अपने एक अंशसे धारण करके स्थित हैं, जो किसी इन्द्रियविशेषके द्वारा ग्रहण नहीं किये जाते तथा जो निर्गुण एवं नित्य हैं, उन परमात्माकी मैं शरण में जाता हूँ ।

सोमार्काग्निमयं(न्) तेजो, या च तारामयी द्युतिः ।

दिवि सं(ञ्)जायते योऽयं(म्), स महात्मा प्रसीदतु ॥ 38 ॥

आकाशमें जो सूर्य और चन्द्रमाका तेज प्रकाशित होता है तथा तारगणोंकी जो ज्योति जगमगाती रहती है, वह सब जिनका ही स्वरूप है, वे परमात्मा मुझपर प्रसन्न हों ।

गुणादिर्निर्गुणश्चाद्यो, लक्ष्मीवां(म्)श्चेतनो ह्यजः ।

सूक्ष्मः(स्) सर्वगतो योगी, स महात्मा प्रसीदतु ॥ 39 ॥

जो समस्त गुणोंके आदि कारण और स्वयं निर्गुण हैं, आदि पुरुष, लक्ष्मीवान्, चेतन, अजन्मा, सूक्ष्म, सर्वव्यापी तथा योगी हैं, वे महात्मा श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हों ।

सां(ङ्)ख्ययोगाश्च ये चान्ये, सिद्धाश्च परमर्षयः ।

यं(वँ) विदित्वा विमुच्यन्ते, स महात्मा प्रसीदतु ॥ 40 ॥

ज्ञानयोगी, कर्मयोगी तथा जो दूसरे दूसरे सिद्ध और महर्षि हैं, वे जिन्हें जानकर इस संसारसे मुक्त हो जाते हैं, वे परमात्मा श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों ।

अव्यक्तः(स्) समधिष्ठाता, ह्यचिन्त्यः(स्) सदसत्परः ।

आस्थितिः(फ्) प्रकृतिश्रेष्ठः(स्), स महात्मा प्रसीदतु ॥ 41 ॥

जो अव्यक्त, सबके अधिष्ठाता, अचिन्त्य और सत्-असत्से विलक्षण हैं, आधाररहित एवं प्रकृतिसे श्रेष्ठ हैं, वे महात्मा श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों ।

क्षेत्रज्ञः(फ्) पञ्चधा भुङ्क्ते, प्रकृतिं(म्) पञ्चभिर्मुखैः ।

महान् गुणां(म्)श्च यो भुङ्क्ते, स महात्मा प्रसीदतु ॥ 42 ॥

जो जीवात्मारूपसे पाँच ज्ञानेन्द्रियरूपी मुखोंद्वारा शब्द आदि पाँच विषयोंका उपभोग करते हैं तथा स्वयं महान् होकर भी जो गुणोंका अनुभव करते हैं, वे महात्मा श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों ।

सूर्यमध्ये स्थितः(स्) सोमस्-तस्य मध्ये च या स्थिता ।

भूतबाह्या च या दीप्तिः(स्), स महात्मा प्रसीदतु ॥ 43 ॥

जो सूर्यमण्डलमें सोमरूपसे स्थित होते हैं, उस सोमके भीतर जो अलौकिक दीप्ति है, वह जिनका स्वरूप है, वे परमात्मा श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों ।

नमस्ते सर्वतः(स्) सर्व, सर्वतोऽक्षिशिरोमुख ।

निर्विकार नमस्तेऽस्तु, साक्षी क्षेत्रे व्यवस्थितः ॥ 44 ॥

सर्वस्वरूप परमेश्वर ! आपको सब ओर से नमस्कार है, आपके सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं। निर्विकार परमात्मन् ! आपको नमस्कार है। आप प्रत्येक क्षेत्र (शरीर) में साक्षीरूपसे स्थित हैं ।

अतीन्द्रिय नमस्तुभ्यं(लँ), लिङ्गैर्व्यक्तैर्न मीयसे ।

ये च त्वां(न्) नाभिजानन्ति, सं(म्)सारे सं(म्)सरन्ति ते ॥ 45 ॥

इन्द्रियातीत परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। व्यक्त लिंगों द्वारा आपका ज्ञान होना असम्भव है। संसारमें जो आपको नहीं जानते, वे जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े रहते हैं ।

कामक्रोधविनिर्मुक्ता, रागद्वेषविवर्जिताः ।

नान्यभक्ता विजानन्ति, न पुनर्नारका द्विजाः ॥ 46 ॥

जो काम और क्रोधसे मुक्त, राग-द्वेषसे रहित तथा आपके अनन्य भक्त हैं, वे ही आपको जान पाते हैं। जो विषयोंके नरकमें पड़े हुए द्विज हैं, वे आपको नहीं जानते हैं ।

एकान्तिनो हि निर्द्वन्द्वा, निराशीः(ख्) कर्मकारिणः ।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणस्-त्वां(वँ) विशन्ति विनिश्चिताः ॥ 47 ॥

जो आपके अनन्य भक्त, द्वन्द्वों से रहित तथा निष्काम कर्म करनेवाले हैं, जिन्होंने ज्ञानमयी अग्नि से अपने समस्त कर्मोंको दग्ध कर दिया है, वे आपके प्रति दृढ़ निष्ठा रखनेवाले पुरुष आपमें ही प्रवेश करते हैं ।

अशरीरं(म्) शरीरस्थं(म्), समं(म्) सर्वेषु देहिषु ।

पुण्यपापविनिर्मुक्ता, भक्तास्त्वां(म्) प्रविशन्त्युत ॥ 48 ॥

आप शरीरमें रहते हुए भी उससे रहित हैं तथा सम्पूर्ण देहधारियोंमें समभावसे स्थित हैं। जो पुण्य और पापसे मुक्त हैं, वे भक्तजन आपमें ही प्रवेश करते हैं ।

अव्यक्तं(म्) बुद्ध्यहं ङ्)कार-मनोभूतेन्द्रियाणि च।

त्वयि तानि च तेषु त्वं(न्), न तेषु त्वं(न्) न ते त्वयि ॥ 49 ॥

अव्यक्त प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्त्व), अहंकार, मन, पञ्च महाभूत तथा सम्पूर्ण इन्द्रियाँ सभी आपमें हैं और उन सबमें आप हैं, किंतु वास्तवमें न उनमें आप हैं, न आपमें वे हैं ।

एकत्वान्यत्वनानात्वं(यँ), ये विदुर्यान्ति ते परम् ।

समोऽसि सर्वभूतेषु, न ते द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ॥ 50 ॥

एकत्व, अन्यत्व और नानात्वका रहस्य जो लोग अच्छी तरह जानते हैं, वे आप परमात्माको प्राप्त होते हैं। आप सम्पूर्ण भूतोंमें सम हैं। आपका न कोई द्वेषपात्र है और न प्रिय।

समत्वमभिकाङ्क्षेऽहं(म्), भक्त्या वै नान्यचेतसा ।

चराचरमिदं(म्) सर्वं(म्), भूतग्रामं(ञ्) चतुर्विधम् ॥ 51 ॥

मैं अनन्य चित्तसे आपकी भक्तिके द्वारा समत्व पाना चाहता हूँ। चार प्रकारका जो यह चराचर प्राणिसमुदाय है, वह सब आपसे व्याप्त है।

त्वया त्वय्येव तत्प्रोतं(म्), सूत्रे मणिगणा इव।

स्रष्टा भोक्तासि कूटस्थो, ह्यतत्त्वस्तत्त्वसं(ञ्)ज्ञितः ॥ 52 ॥

जैसे सूतमें मणियाँ पिरोये होते हैं, उसी प्रकार यह सारा जगत् आपमें ही ओत-प्रोत है ।आप जगत्के स्रष्टा, भोक्ता और कूटस्थ हैं। तत्त्वरूप होकर भी उससे सर्वथा विलक्षण हैं।

अकर्महेतुरचलः(फ्), पृथगात्मन्यवस्थितः ।

न ते भूतेषु सं(य्)योगो, भूततत्त्वगुणातिगः ॥ 53 ॥

आप कर्मके हेतु नहीं हैं। अविचल परमात्मा हैं। प्रत्येक शरीरमें पृथक् पृथक् जीवात्मारूपसे आप ही विद्यमान हैं । वास्तवमें प्राणियोंसे आपका संयोग नहीं है। आप भूत, तत्त्व और गुणोंसे परे हैं।

अहं(ङ्)कारेण बुद्ध्या वा, न ते योगस्त्रिभिर्गुणैः ।

न ते धर्मोऽस्त्यधर्मो वा, नारम्भो जन्म वा पुनः ॥ 54 ॥

अहकार, बुद्धि और तीनों गुणोंसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं है । न आपका कोई धर्म है और न कोई अधर्म। न कोई आरम्भ है न जन्म।

जरामरणमोक्षार्थं(न्), त्वां(म्) प्रपन्नोऽस्मि सर्वशः ।

ईश्वरोऽसि जगन्नाथ, ततः(फ्) परम उच्यसे ॥ 55 ॥

मैं जरा-मृत्युसे छुटकारा पाने के लिये सब प्रकारसे आपकी शरणमें आया हूँ ।जगन्नाथ! आप ईश्वर हैं, इसीलिये परमात्मा कहलाते हैं।

भक्तानां(यँ) यद्धितं(न्) देव, तद्ध्याहि त्रिदशेश्वर।

विषयैरिन्द्रियैर्वापि, न मे भूयः(स्) समागमः ॥ 56 ॥

देव ! सुरेश्वर! भक्तोंके लिये जो हितकी बात हो, उसका मेरे लिये चिन्तन कीजिये । विषयों और इन्द्रियोंके साथ फिर मेरा कभी समागम न हो।

पृथिवीं(यँ) यातु मे घ्राणं(यँ), यातु मे रसना जलम्।

रूपं(म्) हुताशनं(यँ) यातु, स्पर्शो यातु च मारुतम् ॥ 57 ॥

श्रोत्रमाकाशमप्येतु, मनो वैकारिकं(म्) पुनः।

इन्द्रियाण्यपि सं(यँ)यान्तु, स्वासु स्वासु च योनिषु ॥ 58 ॥

मेरी घ्राणेन्द्रिय पृथ्वी-तत्त्वमें मिल जाय और रसना जलमें, रूप (नेत्र) अग्निमें, स्पर्श (त्वचा) वायुमें, श्रोत्रेन्द्रिय आकाशमें और मन वैकारिक अहंकारमें मिल जाय । अच्युत ! इन्द्रियाँ अपनी-अपनी योनियोंमें मिल जायें ।

पृथिवी यातु सलिल-मापोऽग्निमनलोऽनिलम् ।

वायुराकाशमप्येतु, मनश्चाकाश एव च ॥ 59 ॥

अहं(ङ्)कारं(म्) मनो यातु, मोहनं(म्) सर्वदेहिनाम् ।

अहं(ङ्)कारस्ततो बुद्धिं(म्), बुद्धिरव्यक्तमच्युत ॥ 60 ॥

, पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश मनमें, मन समस्त प्राणियोंको मोहनेवाले अहंकारमें, अहंकार बुद्धि (महत्तत्त्व) में और बुद्धि अव्यक्त प्रकृतिमें मिल जाय ।

प्रधाने प्रकृतिं(यँ) याते, गुणसाम्ये व्यवस्थिते ।

वियोगः(स्) सर्वकरणैर्-गुणभूतैश्च मे भवेत् ॥ 61 ॥

जब प्रधान प्रकृतिको प्राप्त हो जाय और गुणोंकी साम्यावस्थारूप महाप्रलय उपस्थित हो जाय, तब मेरा समस्त इन्द्रियों और उनके विषयोंसे वियोग हो जाय ।

निष्कैवल्यपदं(न्) तात, काङ्क्षेऽहं(म्) परमं(न्) तव।

एकीभावस्त्वया मेऽस्तु, न मे जन्म भवेत् पुनः ॥ 62 ॥

तात ! मैं तुम्हारे लिये परम मोक्षकी आकांक्षा रखता हूँ। आपके साथ मेरा एकीभाव हो जाय। इस संसारमें फिर मेरा जन्म न हो ।

त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्-त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ।

त्वामेवाहं(म्) स्मरिष्यामि, मरणे पर्युपस्थिते ॥ 63 ॥

मृत्युकाल उपस्थित होनेपर मेरी बुद्धि आपमें ही लगी रहे। मेरे प्राण आपमें ही लीन रहें। मेरा आपमें ही भक्तिभाव बना रहे और मैं सदा आपकी ही शरणमें पड़ा रहूँ। इस प्रकार मैं निरन्तर आपका ही स्मरण करता रहूँ ।

पूर्वदेहकृता ये मे, व्याधयः(फ्) प्रविशन्तु माम् ।

अर्दयन्तु च दुःखानि, ऋणं(म्) मे प्रतिमुञ्चतु ॥ 64 ॥

पूर्व शरीरमें मैंने जो दुष्कर्म किये हों, उनके फलस्वरूप रोग-व्याधि मेरे शरीरमें प्रवेश करें और नाना प्रकारके दुःख मुझे आकर सतावें। इन सबका जो मेरे ऊपर ऋण है, वह उतर जाय ।

अनुध्यातोऽसि देवेश, न मे जन्म भवेत्पुनः ।

तस्माद् ब्रवीमि कर्माणि, ऋणं(म्) मे न भवेदिति ॥ 65 ॥

देवेश्वर ! मैंने इसलिये आपका स्मरण किया है कि फिर मेरा जन्म न हो; अतः फिर कहता हूँ कि मेरे कर्म नष्ट हो जायँ और मुझपर किसीका ऋण बाकी न रह जाय ।

उपतिष्ठन्तु मां(म्) सर्वे, व्याधयः(फ्) पूर्वसं(ञ्)चिताः ।

अनृणो गन्तुमिच्छामि, तद्विष्णोः(फ्) परमं(म्) पदम् ॥ 66 ॥

पूर्व जन्ममें जिन कर्मोंका मेरे द्वारा संचय किया गया है, वे सभी रोग मेरे शरीरमें उपस्थित हो जायँ। मैं सबसे उऋण होकर भगवान् विष्णुके परम धामको जाना चाहता हूँ।

श्रीभगवानुवाच

अहं(म्) भगवतस्तस्य, मम चासौ सनातनः ।

तस्याहं(न्) न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति ॥ 67 ॥

श्रीभगवान् बोले- नारद ! मैं उस सौभाग्यशाली भक्तका हूँ और वह भक्त भी मेरा सनातन सखा है। मैं उसके लिये कभी अदृश्य नहीं होता और न वही कभी मेरी दृष्टिसे ओझल होता है ।

कर्मेन्द्रियाणि सं(यँ)यम्य, पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च।

दशेन्द्रियाणि मनसि, अहं(ङ्)कारे तथा मनः ॥ 68 ॥

साधक पाँच कर्मेन्द्रियों तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको संयममें रखकर उन दसों इन्द्रियोंको मनमें विलीन करे। मनको अहंकारमें...

अहं(ङ्)कारं(न्) तथा बुद्धौ, बुद्धिमात्मनि योजयेत्।

यतबुद्धीन्द्रियः(फ्) पश्यन्, बुद्ध्या बुद्ध्येत् परात्परम् ॥ 69 ॥

अहंकारको बुद्धिमें और बुद्धिको आत्मामें लगावे । पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंको संयममें रखकर बुद्धिके द्वारा परात्पर परमात्माका अनुभव करे ।

ममायमिति यस्याहं(यँ), येन सर्वमिदं(न्) ततम् ।

आत्मनाऽऽत्मनि सं(यँ)योज्य, परमात्मन्यनुस्मरेत् ॥ 70 ॥

ततो बुद्धेः(फ्) परं(म्) बुद्ध्वा, लभते न पुनर्भवम्।

मरणे समनुप्राप्ते, यश्चैवं(म्) ममनुस्मरेत् ॥ 71 ॥

कि यह परमेश्वर मेरा है और मैं इसका हूँ, तथा इसीने इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है ।स्वयं ही अपने-आपको परमात्माके ध्यानमें लगाकर निरन्तर उनका स्मरण करे, तदनन्तर बुद्धिसे भी परे परमात्माको जानकर मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता।

अपि पापसमाचारः(स्), स याति परमां(ङ्) गतिम् ।

ॐ नमो भगवते तस्मै, देहिनां(म्) परमात्मने ॥ 72 ॥

नारायणाय भक्ताना-मेकनिष्ठाय शाश्वते ।

इमामनुस्मृतिं(न्) दिव्यां(वँ), वैष्णवीं(म्) सुसमाहितः ॥ 73 ॥

जो मृत्युकाल आनेपर इस प्रकार मेरा स्मरण करता है, वह पुरुष पहलेका पापाचारी रहा हो तो भी परम गतिको प्राप्त होता है । समस्त देहधारियोंके परमात्मा तथा भक्तोंके प्रति एकमात्र निष्ठा रखनेवाले उन सनातन भगवान् नारायणको नमस्कार है । यह दिव्य वैष्णवी-अनुस्मृति विद्या है।

स्वपन्विबुध्यं(म्)श्च पठन्, यत्र तत्र समभ्यसेत् ।

पौर्णमास्याममायां(ञ्) च, द्वादश्यां(ञ्) च विशेषतः ॥ 74 ॥

श्रावयेच्छ्रद्दधानां(म्)श्च, मद्भक्तां(म्)श्च विशेषतः ।

यद्यहं(ङ्)कारमाश्रित्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः ॥ 75 ॥

मनुष्य एकाग्रचित्त होकर सोते, जागते और स्वाध्याय करते समय जहाँ कहीं भी इसका जप करता रहे । पूर्णिमा, अमावास्या तथा विशेषतः द्वादशी तिथिको मेरे श्रद्धालु भक्तोंको इसका श्रवण करावे ।यदि कोई अहंकारका आश्रय लेकर यज्ञ, दान और तपरूप कर्म करे

कुर्वं(म्)स्तत्फलमाप्नोति, पुनरावर्तनं(न्) तु तत्।

अभ्यर्चयन् पितॄन् देवान्, पठन् जुह्वन् बलिं(न्) ददत् ॥ 76 ॥

ज्वलन्नग्निं(म्) स्मरेद्यो मां(म्), स याति परमां(ङ्) गतिम् ।

यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम् ॥ 77 ॥

तो उसका फल उसे मिलता है, परंतु वह आवागमनके चक्करमें डालनेवाला होता है । जो देवताओं और पितरोंकी पूजा, पाठ, होम और बलिवैश्वदेव करते तथा अग्निमें आहुति देते समय मेरा स्मरण करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है ।यज्ञ, दान और तप-ये मनीषी पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं;

यज्ञं(न्) दानं(न्) तपस्तस्मात्-कुर्यादाशीर्विवर्जितः ।

नम इत्येव यो ब्रूयान्-मद्भक्तः(श्) श्रद्धयान्वितः ॥ 78 ॥

तस्याक्षयो भवेल्लोकः(श्), श्वपाकस्यापि नारद ।

किं(म्) पुनर्ये यजन्ते मां(म्), साधका विधिपूर्वकम् ॥ 79 ॥

श्रद्धावन्तो यतात्मानस्-ते मां(यँ) यान्ति मदाश्रिताः ।

कर्माण्याद्यन्तवन्तीह, मद्भक्तो नान्तमश्नुते ॥ 80 ॥

मामेव तस्माद्देवर्षे, ध्याहि नित्यमतन्द्रितः ।

अवाप्स्यसि ततः(स्) सिद्धिं(न्), द्रक्ष्यस्येव पदं(म्) मम ॥ 81 ॥

अतः यज्ञ, दान और तपका निष्कामभावसे अनुष्ठान करे । नारद ! जो मेरा भक्त श्रद्धापूर्वक मेरे लिये केवल नमस्कारमात्र बोल देता है, वह चाण्डाल ही क्यों न हो, उसे अक्षयलोककी प्राप्ति होती है । फिर जो साधक मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर मेरे आश्रित हो श्रद्धा और विधिके साथ मेरी आराधना करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है? देवर्षे! सारे कर्म और उनके फल आदि-अन्तवाले हैं; परंतु मेरा भक्त अन्तवान् (विनाशशील) फलका उपभोग नहीं करता; अतः तुम सदा आलस्यरहित होकर मेरा ही ध्यान करो। इससे तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त होगी और तुम मेरे परमधामका दर्शन कर लोगे ।

अज्ञानाय च यो ज्ञानं(न्), दद्याद्धर्मोपदेशतः ।

कृत्स्नां(वँ) वा पृथिवीं(न्) दद्यात्-तेन तुल्यं(ञ्) च तत् फलम् ॥ 82 ॥

जो धर्मोपदेशके द्वारा अज्ञानी पुरुषको ज्ञान प्रदान करता है अथवा जो किसीको समूची पृथ्वीका दान कर देता है तो उस ज्ञानदानका फल इस पृथ्वीदानके बराबर ही माना. जाता है ।

तस्मात्प्रदेयं(म्) साधुभ्यो, जन्मबन्धभयापहम्।

एवं(न्) दत्त्वा नरश्रेष्ठ, श्रेयो वीर्यं(ञ्) च विन्दति ॥ 83 ॥

नरश्रेष्ठ नारद ! इसलिये साधु पुरुषोंको जन्म और बन्धनके भयको दूर करनेवाला ज्ञान ही देना चाहिये। इस प्रकार ज्ञान देकर मनुष्य कल्याण और बल प्राप्त करता है ।

अश्वमेधसहस्त्राणां(म्), सहस्त्रं(यँ) यः(स्) समाचरेत् ।

नासौ पदमवाप्नोति, मद्भक्तैर्यदवाप्यते ॥ 84 ॥

जो दस लाख अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान कर ले, वह भी उस पदको नहीं पा सकता, जो मेरे भक्तोंको प्राप्त हो जाता है ।

भीष्म उवाच

एवं(म्) पृष्टः(फ्) पुरा तेन, नारदेन सुरर्षिणा।

यदुवाच तदा शम्भुस्-तदुक्तं(न्) तव सुव्रत ॥ 85 ॥

भीष्मजी कहते हैं-सुव्रत! इस प्रकार पूर्वकालमें देवर्षि नारद के पूछनेपर कल्याणमय भगवान् विष्णुने उस समय जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हें बता दिया ।

त्वमप्येकमना भूत्वा, ध्याहि ध्येयं(ङ्) गुणातिगम् ।

भजस्व सर्वभावेन, परमात्मानमव्ययम् ॥ 86 ॥

तुम भी एकचित्त होकर उन गुणातीत परमात्माका ध्यान करो और सम्पूर्ण भक्तिभावसे उन्हीं अविनाशी परमात्माका भजन करो ।

श्रुत्वैतन्नारदो वाक्यं(न्), दिव्यं(न्) नारायणेरितम् ।

अत्यन्तभक्तिमान् देव, एकान्तत्वमुपेयिवान् ॥ 87 ॥

भगवान् नारायणका कहा हुआ यह दिव्य वचन सुनकर अत्यन्त भक्तिमान् देवर्षि नारद भगवान्के प्रति एकाग्रचित्त हो गये ।

नारायणमृषिं(न्) देवं(न्), दशवर्षाण्यनन्यभाक् ।

इदं(ञ्) जपन् वै प्राप्नोति, तद्विष्णोः(फ्) परमं(म्) पदम् ॥ 88 ॥

जो पुरुष अनन्यभावसे दस वर्षांतक ऋषि-प्रवर नारायणदेवका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका जप करता है, वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है।

किं(न्) तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्-भक्तिर्यस्य जनार्दने ।

नमो नारायणायेति, मन्त्रः(स्) सर्वार्थसाधकः ॥ 89 ॥

जिसकी भगवान् जनार्दनमें भक्ति है, उसे बहुत-से मन्त्रोंद्वारा क्या लेना है? 'ॐ नमो नारायणाय' यह एकमात्र मन्त्र ही सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है।

इमां(म्) रहस्यां(म्) परमामनुस्मृति-

मधीत्य बुद्धिं(लँ) लभते च नैष्ठिकीम् ।

विहाय दुःखान्यपमुच्य सङ्कटात्

स वीतरागो विचरेन्महीमिमाम् ॥ 90 ॥

इस परम गोपनीय अनुस्मृति विद्याका स्वाध्याय करके मनुष्य भगवान्‌के प्रति दृढ़ निष्ठा रखनेवाली बुद्धि प्राप्त कर लेता है। वह सारे दुःखोंको दूर करके संकटसे मुक्त एवं वीतराग हो इस पृथ्वीपर सर्वत्र विचरण करता है ।

॥ इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्त्रयां(म्) सं(म्)हितायां(वँ्)

वैयासिक्यां(म्) शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि

श्रीविष्णोर्दिव्यमनुस्मृतिस्तोत्रं(म्) सम्पूर्णम् ॥